

शिक्षा का निजीकरण एवं भारतीय समाज पर इसका प्रभाव

प्रभात कुमार शोधार्थी

कृ. मायावती गवर्नमेंट महिला पी.जी. कॉलेज

बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर, उ.प्र.

चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

सार

निजीकरण की अवधारणा निजी स्वामित्व की बहुस्तरीय मात्रात्मकता प्रदर्शित करती है। यह सम्पूर्ण स्वामित्व के रूप में भी हो सकती है और साक्षात् स्वामित्व के रूप में भी अथवा इसका स्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं में निजी क्षेत्र के प्रबन्धन एवं नियंत्रण का दायित्व सौंप कर सरकारी एकाधिकार को कम करने के रूप में भी सकती है। भारतीय समाज में विभिन्न आय स्तरों की जनसंख्या का निवास है। स्वामित्व के निजीकरण ने शिक्षण संस्थानों को लाभ प्राप्त करने वाली फर्मों के रूप में परिवर्तित कर दिया है जो कि शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त के विपरीत है।

बीज शब्द

निजी शिक्षा, भारतीय समाज, राज्य का दायित्व, आर्थिक विषमता/गुणवत्तापूर्ण शिक्षा।

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना होता है जिसमें राज्य एक सहायक तत्व के रूप में कार्य करती है। भारत में भारतीय संविधान के द्वारा लोक कल्याणकारी राज्य की संकल्पना है जिसमें राज्य जनता के हितों में कार्य करती है न कि फायदे के लिए। निजीकरण की अवधारणा निजी स्वामित्व की बहुस्तरीय मात्रात्मकता प्रदर्शित करती है – यह सम्पूर्ण स्वामित्व के रूप में भी हो सकती है और साक्षात् स्वामित्व के रूप में भी अथवा इसका स्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं में निजी क्षेत्रों को प्रबन्धन एवं नियंत्रण का दायित्व सौंपकर सरकारी एकाधिकार को कम करने के रूप में भी हो सकती है। अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में धीरे-धीरे निजीकरण के प्रभाव को महसूस किया जा रहा है। इसलिए अनिवार्यतः शिक्षा के क्षेत्र में भी निजीकरण की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है।

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के विकास एवं विस्तार का भा राज्य पर बढ़ा है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41 के अनुसार, सरकार अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार जनता के शिक्षा-संबंधी अधिकारों को पुष्ट करेगी।

सामाजिक विकास एवं आर्थिक क्षमता में लगातार वृद्धि के मद्देनजर सरकार के लिए 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए पर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराना अपरिहार्य हो जाता है; साथ ही नागरिकों की उच्च शिक्षा के लिए भी उसे व्यवस्था करनी पड़ती है, जिससे वे एक सम्मानजनक जीवनयापन कर सकें। इन सबके साथ, एक और बात महत्वपूर्ण है कि सरकार को सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराने के लिए विशेष रूप से सचेष्ट रहना पड़ता है।

सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता-विद्यालय खोल रहे हैं, प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर विद्यालयों का संचालनक उसके द्वारा होता है और महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के द्वारा उच्च शिक्षा का प्रबंध भी वहीं करती है। परंतु धीरे-धीरे इन संस्थाओं के वित्तीयन में अनेक प्रकार की कठिनाइयां पैदा हो रही हैं।

शिक्षा-आयोग (1964-66) ने 1986 तक सकल राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष शिक्षा पर व्यय करने की सिफारिश की थी, यदि राष्ट्रीय आय में विकास की दर 6 प्रतिशत तक पहुंच जाती है और जनसंख्या-वृद्धि दर 1955-56 के मुकाबले 1985-86 में नियंत्रित होकर 2.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक जाती है। परंतु, सकल राष्ट्रीय आय में वास्तविक विकास-दर 1965-66 से 1985-86 तक मात्र 3.97 प्रतिशत प्रतिवर्ष की सीमा ही छू सकी। संसाधनों की ऐसी किल्लत में विभिन्न प्रक्षेत्रों में राशि-आवंटन ने अच्छी-खासी प्रतियोगिता जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी और उसमें शिक्षा प्राथमिकता सूची में अत्यंत नीचे आ गई। सरकार अब बहुत लम्बे समय तक इस 'बोझ' को ढो पाने में अपने को असमर्थ महसूस करने लगी है। इसलिए, अब शिक्षा का निजीकरण ही इसका एकमात्र निदान बताया व समझा जा रहा है।

ज्ञान का विस्तार बहुत तेजी से हो रहा है और इसका संग्रह विकास की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। परिणामस्वरूप, शिक्षा अब स्वयं एक उत्पाद बन गई है, जो कि मानव-संसाधन विकास के लिए अनिवार्य है। निजी क्षेत्र, जिसे ज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है, भी शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा सकता है। विशेषकर तकनीकी क्रांति के बाद इसकी संभावनाएं और भी बढ़ गयी हैं। संचार, इलेक्ट्रॉनिक, कंप्यूटर आदि क्षेत्रों में हुए तकनीकी विकास के लिए एक सुशिक्षित एवं प्रभावी रूप से प्रशिक्षित मानव-संसाधन की आवश्यकता है, जिसकी आपूर्ति मात्र सार्वजनिक क्षेत्र की शिक्षण-संस्थाओं से संभव नहीं।

निजीकरण की आवश्यकता इसलिए भी महसूस की जा रही है कि वर्षों से राज्य-प्रायोजित शिक्षा ने इस क्षेत्र को लगभग 'जनसेवा' में परिवर्तित कर दिया है और विशेषकर इसके प्रत्यक्ष लाभान्वितों (छात्रों) ने इसके महत्व को बहुत वरीयता नहीं दी है। अस्तु, यदि शिक्षा देने के बदले उसकी संपूर्ण कीमत या आंशिक कीमत शिक्षा-शुल्क आदि के रूप में वसूल की जाती है, तो एक तो छात्र इसके महत्व को समझेंगे, दूसरे इसे गंभीरता से लेंगे, जिसे उनकी और शिक्षा, दोनों की गुणवत्ता बढ़ेगी।

निजीकरण का लक्ष्य ऐसे विद्यालयों, महाविद्यालयों, पॉलिटेक्निक एवं व्यावसायिक संस्थाओं की स्थापना है, जो शिक्षा की कुल लागत वसूल करेंगे। इससे सरकार के अनुदानों में कमी आएगी और सरकार का घाटे का बोझ कम होगा। ऐसी संस्थाओं को पर्याप्त छूट होगी कि वे योग्य शिक्षकों को बेहतर वेतनमान पर भर्ती कर सकें। निजीकरण की इस प्रक्रिया में उन कॉरपोरेट क्षेत्रों से भी अधिक सहयोग की अपेक्षा की जा सकती है, जो इस प्रकार की संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त लोगों की सेवाएं प्राप्त करते हैं।

विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर की शिक्षा में सरकार की सुविस्तृत गतिविधियों के बावजूद निजीकरण मुख्यतः विद्यालय स्तर पर ही हो रहा है। निजी विद्यालय, जो निजी क्षेत्रों द्वारा पूर्णतः व्यावसायिक आधार पर चलाए जाते हैं, बड़े विडंबनापूर्ण ढंग से "पब्लिक स्कूल" कहे जाते हैं और इनमें संपूर्ण शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से दी जाती है। निजी क्षेत्र की इन गतिविधियों में धार्मिक संस्थाएं एवं न्यास भी संलग्न हैं, जिन्हें किसी प्रकार का सरकारी अनुदान नहीं मिलता, जैसे-डी.ए.वी. प्रबंधन, सनातन धर्म फाउण्डेशन आदि। परंतु, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कई संस्थाएं निजी क्षेत्रों द्वारा स्थापित हैं, किंतु उन्हें पर्याप्त सरकारी एवं गैर-सरकारी अनुदान मिलते हैं। 1989-90 में दिल्ली विश्वविद्यालय की शिक्षण-संस्थाओं पर किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार सार्वजनिक संस्थाओं में; जो सरकार एवं विश्वविद्यालय द्वारा प्रबंधित हैं, कुल छात्रों के तीन-चौथाई निबंधित हैं। फिर भी, उधर निजी प्रबंधन के अंतर्गत भी कई संस्थाएं विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं, जिन्हें सरकार से 95 प्रतिशत अनुदान मिलता है।

शिक्षा का सारा व्यय-भार अब सरकार वहन नहीं कर सकती। सरकार पर सारी निर्भरता का अर्थ होगा शिक्षा पर सब्सिडी के रूप में सरकार का भारी व्यय, जो राजकोषीय स्थिति को बुरी तरह कुप्रभावित करेगा। कुल सरकारी सब्सिडी का 74 प्रतिशत प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों को दिया जाता है और 19 प्रतिशत उच्च शिक्षा को। चिंताजनक रूप से बमुश्किल प्रति छात्र कुल व्यय का 5 प्रतिशत शिक्षा शुल्क के माध्यम से वसूल हो पाता है। फिर पिछले कई वर्षों से सरकारी संस्थानों में शिक्षा शुल्क में बिल्कुल भी वृद्धि नहीं हुई है,

जबकि व्यय भार कई गुना बढ़ गया है, इसलिए स्थिति और भी शोचनीय है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि सरकार पर व्यय-भार बढ़ेगा, तो इसका असर शिक्षा की गुणवत्ता पर अवश्य पड़ेगा।

इस पूरे संदर्भ में एक और तथ्य है कि सिर्फ निजी क्षेत्र ही शिक्षा की सारी आवश्यकताएं पूरी नहीं कर सकता। सबसे पहली बात तो यह है कि ये निजी क्षेत्र शिक्षा देने के बदले जिस शुल्क की अपेक्षा रखते हैं, उसे दे पाने में हमारे देश का बहुसंख्य निर्धन-वर्ग असमर्थ है। उदाहरण के तौर पर निजी क्षेत्र की तकनीकी संस्थाओं द्वारा ली जाने वाली 'कैपिटेशन-फी' को देखा जा सकता है। पूर्णतः निजीकरण की व्यवस्था शिक्षा को घिनौने व्यवसाय में परिवर्तित कर देगी। अपने संचालन के लिए स्वतंत्र निजी प्रबंधन बाजार एवं समय के व्यावसायिक रुख के अनुरूप पाठ्यक्रम शुरू या बंद करेंगे और तदनु रूप शिक्षकों की बहाली एवं उन्मुक्ति भी कर देंगे। इसके कई तरह के दुष्परिणाम होंगे, जिनमें शिक्षकों का शोषण सर्वाधिक आशंकित है। वैसे, इसका एक सकारात्मक पहलू भी है कि सरकारी क्षेत्रों में नौकरी की सुरक्षा ने शिक्षकों को लापरवाह बना दिया है और सर्वाधिक प्रोन्नति ने अध्ययन एवं शोध की प्रक्रिया को बुरी तरह कुप्रभावित कर दिया है।

शिक्षा के प्रतिदान की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। एक अनुमान किया गया है कि अगले 10 वर्षों के छात्रों से वसूले जाने वाले शुल्क से शिक्षा के क्षेत्र में कुल व्यय का 25 प्रतिशत हासिल कर लिया जाने लगेगा। इस स्तर को प्राप्त करने के लिए 1990 में राममूर्ति समिति ने उच्च शिक्षा में शुल्क-वृद्धि का प्रस्ताव किया था, जिसके अनुसार अत्यंत धनी अत्यंत धनी शिक्षार्थियों से कुल शिक्षा-वृद्धि का प्रस्ताव किया था, जिसके अनुसार अत्यंत धनी शिक्षार्थियों से कुल शिक्षा लागत का 75 प्रतिशत उसके बाद के समृद्ध शिक्षार्थियों से 50 प्रतिशत और उसके बादके स्तर के शिक्षार्थियों से 25 प्रतिशत वसूल किया जाए और आर्थिक रूप से पिछड़े तबके के शिक्षार्थियों से कोई शुल्क नहीं वसूल किया जाए। यह विभेदकारी शुल्क-प्रणाली कहीं से भी व्यावहारिक नहीं है। एक समान शुल्क प्रणाली ही व्यावहारिक हो सकती है, जिसमें 25 प्रतिशत छात्रों को, जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़े तबकों से आते हैं, पूर्ण शुल्क-उन्मुक्ति दी जा सकती है। इससे लागत-वसूली की दर भी बढ़ेगी और सरकार का व्यय-भार भी कम होगा।

विश्व बैंक ने आकर्षक सुझाव दिया है कि कॉरपोरेट क्षेत्र, जो उच्च शिक्षा-क्षेत्र के उत्पाद के सबसे बड़े उपभोक्ता हैं, पर स्नातक-कर आरोपित किया जाए। राममूर्ति समिति ने ऐसे किसी प्रयास से इस आशंका के साथ असहमति जताई कि इसका असर कॉरपोरेट-क्षेत्र की आर्थिक स्थिति पर पड़ेगा और रोजगार के अवसरों को भी कुप्रभावित करेगा। कई देशों में

विश्वविद्यालयों में कॉरपोरेट क्षेत्र शिक्षा के लिए पर्याप्त अनुदान देते हैं। इसलिए, यदि उपर्युक्त प्रकार का कोई प्रयास भारत में भी किया जाए, तो इससे कुछ दुष्परिणामों को देखना बहुत तार्किक नहीं लगता।

विश्वविद्यालयों में कॉरपोरेट क्षेत्र के लिए अनुसंधान कार्य किए जा सकते हैं और इसके लिए जो धन उस क्षेत्र से मिलेगा, उसका उपयोग शैक्षिक आवश्यकताओं के लिए किया जा सकता है।

निजीकरण की इस प्रक्रिया में सरकारी हस्तक्षेप के द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि निजी संस्थाओं में निर्धन वर्ग के हितों का भी पूरा ध्यान रखा जा रहा है। इससे यह भी सुनिश्चित किया जा सकेगा कि निजीकरण का परिणाम शिक्षा का पूर्णतः व्यवसायीकरण नहीं होता।

शिक्षा विकास की अनिवार्य शर्त है और सरकार के पास इसके लिए पर्याप्त आर्थिक संसाधन नहीं है। ऐसी स्थिति में निजीकरण ही एक उपाय है, जिसे कतिपय दिशा-निर्देशों के द्वारा लागू करना चाहिए। यह प्रक्रिया समाजोपयोगी के साथ-साथ शिक्षा को मूल्यप्रभावी भी बनाएगी।

सन्दर्भ सूची

1. जीत, योगेन्द्र 'शिक्षा में नवाचार और नवीन प्रवृत्तियाँ', विनोद पुस्तक मंदिर।
2. पचौरी, गिरीश 'शिक्षा के सामाजिक आधार', आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
3. शास्त्री, के.एन उदीयमान, 'भारतीय समाज में शिक्षा', अर्जुन पब्लिशिंग हाउस।